ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 3.4
IJAR 2015; 1(6): 188-189
www.allresearchjournal.com
Received: 02-03-2015
Accepted: 06-05-2015

डॉ. आशा उपाध्याय
व्याख्याता, संस्कृत विभाग, से.मु. मा.राज. कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आशा उपाध्याय
व्याख्याता, संस्कृत विभाग, से.मु. मा.राज. कन्या महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान, भारत

श्रीमद् भगवद्गीता में यज्ञ का महत्व

डॉ. आशा उपाध्याय

प्रस्तावना

यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है हमारा कोई भी शुभ–अशुभ धर्म कृत्य यज्ञ के बिना पूर्ण नहीं होता है। जन्म से लेकर अन्त्येष्टि तक 16 संस्कार होते हैं इनमें से एक अग्निहोत्र आवश्यक है। यज्ञ में वेद मंत्रों से विधिपूर्वक आहुति दी जाती है और शरीर को यज्ञ भगवान के अर्पण किया जाता है। आत्म साक्षात्कार, स्वर्ग, सुख, बन्धन मुक्ति मनः शुद्धि, पाप प्रायश्चित, आत्मबल वृद्धि और वृद्धि सिद्धियों का केन्द्र भी यज्ञ ही है। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं।.

श्रीमद् भगवद्गीता प्रस्थान त्रयी में स्मृति प्रस्थान का ग्रंथ है। गीता महाभारत के भीष्मपर्व का एक भाग है।, जिस तरह वेद में कर्म –उपासना और ज्ञान का निरुपण किया जाता है, उसी तरह गीता में भी कर्म उपासना और ज्ञान निरुपण किया जाता है।. यह जो गीता है स्वयं परब्रह्म रूप चिदानन्द श्रीकृष्ण ने अपने मुख से अर्जुन को सुनायी है इससे यह वेदत्रयी– ज्ञान रूप कर्मकाण्डमय और सदा आनन्द तथा तत्त्व की देन है।,

श्रीमद् भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में के आठवें से लेकर सोलहवें श्लोक तक इसी यज्ञ की आवश्यकता का प्रतिपादन किया गया है। इस संबंध में जो प्राचीन सिद्धान्त है उसके और भगवद्गीता के सिद्धान्त में अन्तर इतना ही है कि भगवद्गीता के अनुसार यज्ञरूप कर्म स्वार्थ– बुद्धि से नहीं अपितु केवल, ईश्वरीय नियम के पालन के लिए करना चाहिए। यज्ञ की आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए इसे कार्य और कारण के एक ऐसे चक्र का अंग बताया गया है, जिस चक्र का प्रत्येक अंग अपने पूर्ववर्ती अंग की, कार्य एवं परवर्ती अंग का कारण होता है जिसमें एक भी अंग की न्यूनता से सारा चक्र नष्ट हो जाता है। इस प्रतिपादन की अन्तिम वाक्य यह है :–

हे पृथापुत्र ! इस प्रकार से चलाये हुए–चक्र को चालू रखने में जो सहायता नहीं देता उसका जीवन पापमय होता है और इन्द्रियों के सुख को ही परमसुख– मानता हुआ वह व्यर्थ ही जीता है।.

गीता जी के श्लोकों पर विचार किया जाये तो यह बात सिद्ध होती है कि निष्काम भाव से किये गये शास्त्र विहित सभी शुभ कर्मों को यज्ञ कहा गया है। यज्ञों की विशेष वर्णन चौथे अध्याय में आता है। उसमें भगवान् कहते है कि केवल यज्ञ के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के संपूर्ण कर्म–विलीन हो जाते हैं अर्थात् बन्धन कारक नही होते है।

यज्ञायाचरमः कर्म समग्रं प्रविलीयते।[1]

इसी बात को भगवान तीसरे अध्याय के 9वें श्लोक में दूसरे ढंग से कहते हैं कि यज्ञ के लिए किये जाने वाले कमों अतिरिक्त जो भी कर्म होते है वह सभी बन्धन कारक होते है –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः।[2]

चौथे अध्याय के 24वें से 30वें श्लोक तक भगवान् 12 प्रकार के यज्ञों श्क वर्णन करते हैं। जिसका वा नामकरण रामसुखदास जी ने गीता दर्पण में किया है।–

(1) ब्रह्म यज्ञ (2) भगवदर्पण यज्ञ (3) अभिन्नता रूप यज्ञ (4) संयमरूप यज्ञ (5) विषय– हवनरूप यज्ञ (6) समाधिरूप यज्ञ (7) द्रव्ययन (8) तपोयज्ञ (9) योगयज्ञ (10) स्वाध्यायरूप यज्ञ (11) प्राणायाम यज्ञ (12) स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम रूप यज्ञ।[3]

गीता के तीसरे अध्याय के नवें और चौथे अध्याय के तेईसवें और इकतीसवें इन चारों श्लोकों में यज्ञ का फल बतलाया गया है।.

यज्ञार्थातिकर्मणो ऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचरः।।[4]
गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते।[5]
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम।।[6]

कहा गया है – सम्पूर्ण पापों का नाश, संसार से संबंध विच्छेद और परमात्वतत्व की प्राप्ति। अतः परमात्मतत्व की प्राप्ति के जितने भी उपाय वे सबके सब गीता के यज्ञ शब्द के अन्तर्गत आ जाते है।

गीता का यज्ञ शब्द इतना व्यापक है कि इसमें यज्ञ, दान, तप, तीर्थ व्रत, होम आदि सभी शास्त्र विहित शुभ कर्म आ जाते है इस प्रकार कर्तृत्वाभिमान और आसक्ति से रहित होकर किये गये सम्पूर्ण शुभ कर्म यज्ञ के अन्तर्गत आ जाते हैं। यज्ञ शब्द– कर्तव्य कर्मों का वाचक है। अपने वर्ण आश्रम जाति, स्वभाव, देश–काल आदि के अनुसार प्राप्त कर्तव्य कर्म यज्ञ धर्म अन्तर्गत आ जाते है। दूसरे के हित की भगवान् से किये जाने वाले सभी कर्म यज्ञ है। "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य" पदों से अपने कर्तव्थ कर्मों के द्वारा परमात्मा पूजन करने की जो बात कही गई है वह भी यज्ञ के ही अन्तर्गत है।.

इस प्रकार यज्ञ एक भावपूर्ण सरिता है जिसमें अवगाहन करने से चित्त के समस्त विकार व दुर्भावनाएं समाप्त हो जाती है तथा व्यक्ति का जीवन उच्चतम आदर्शों से परिपूर्ण हो जाता है ऐसे भक्त समाज में अनुकरणीय बन जाते है इसलिए समाज की कल्याण होता है तथा उनके मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है। जिज्ञासा उत्पन्न होने से उनमें ईश्वर के प्रति श्रद्धाभाव जाग्रत होता है।, जिसके बल पर उनमें ईश्वर प्रेम का स्फुरण होता है व्यक्ति पवित्र तथा निष्कलंक हो जाता है। जिससे उसके परिवार में समाज में तथा संसार में पवित्र भावों का संचरण होता है।

संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय – 4
2. श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय –3.9
3. स्वामी रामसुखदास गीता – हिन्दी व्याख्या
4. श्रीमद्भगवद्गीता 3.9
5. श्रीमद्भगवद्गीता 4.23
6. श्रीमद्भगवद्गीता 4.31